गौवंश की घटती संख्या और गौकशी

एक विश्लेषण

डॉ. राम प्रताप गुप्ता

भूमिहीन एवं सीमांत कृषकों की आजीविका के स्रोतों में पशुपालन की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। परंतु विगत वर्षों में चारागाहों को कृषि भूमि, शहरीकरण, औद्योगिक क्षेत्र आदि में परिवर्तित करने की बढ़ती प्रवृत्ति तथा वनों में पशुओं के प्रवेश पर बढ़ती पाबंदियों आदि कारणों से गायों और अन्य दुधारू पशुओं के पालन की लागत दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। दूसरी ओर देशी गायों की दूध देने की निम्न स्तरीय क्षमता की पृष्ठभूमि में इनको पालना आर्थिक दृष्टि से अकार्यक्षम होता जा रहा था।

2004-05 में देशी गायों की दूध देने की औसत क्षमता मात्र 1.96 कि.ग्रा. प्रतिदिन थी। यही नहीं, पीढ़ी दर पीढ़ी कृषि भूमि के विभाजन के कारण कृषि जोतों का आकार भी घटता जा रहा था। इस समय देश में तीन-चौथाई कृषि जोतों का आकार दो हैक्टर से भी कम है। और तो और, इनमें से आधी जोतें तो एक हैक्टर से भी कम है।

एक ओर तो गौवंशीय पशुओं को पालने की बढ़ती लागतें तथा दूसरी ओर कृषि जोतों के घटते आकार के कारण किसानों के लिए बैलों से खेती करना घाटे का सौदा बनता जा रहा था। उनके लिए किराए के ट्रेक्टरों द्वारा खेतों की जुताई-बुवाई अधिक सस्ता हो गया। इस तरह देशी गायों की दूध देने की निम्न स्तरीय क्षमता, उन्हें पालने की बढ़ती लागतें, छोटे कृषकों की बैलों से खेती करने में घटती रुचि वगैरह कारणों से इन्हें पालने में रुचि कम होती जा रही थी।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना अवधि में प्रति 100 व्यक्तियों के पीछे गायों की संख्या 52 थी परंतु उपरोक्त कारणों से सन 1992 में यह गिरकर 23 ही रह गई। 1992 के बाद के वर्षों में गौवंशियों की कुल संख्या भी 20 करोड़ से गिरकर 19 करोड़ ही रह गई यानी इनमें 5 प्रतिशत की गिरावट आई। इसके पीछे प्रमुख कारण बैलों की संख्या में अधिक तेज़ी से गिरावट थी। कुल बैलों, बछड़ों की संख्या सन 1992 में 7.75 करोड़ से गिरकर सन 2012 में 6.19 करोड़ ही रह गई। अर्थात उनमें 20 प्रतिशत की गिरावट आई। गौवंशियों की कुल संख्या में कमी के पीछे देशी गायों और बैलों की संख्या में कमी थी, वहीं साथ ही इनमें अधिक दूध देने वाली संकर गायों की संख्या बढ़ती जा रही थी। साथ ही साथ कृषि में बैलों की घटती उपयोगिता के कारण किसान गाय के बछड़ों को पालने के स्थान पर उन्हें बेचने लगे यद्यपि वे इस बात से भलीभांति अवगत रहते हैं कि जिन बछड़ों को वे बेच रहे हैं, वे अंततः बूचड़खाने पहुंच जाने वाले है, परंतु वे आर्थिक कारणों से विवश थे।

इस सारी पृष्ठभूमि में कुछ प्रश्न स्पष्ट रूप से उभर कर आते हैं। अगर हम देशी गायों की संख्या में तेज़ी से हो रही गिरावट को रोकना चाहते हैं तो हमें उनकी दूध देने की क्षमता में वृद्धि करना होगा। इस हेतु हमें बेहतर किस्म के सांडों के साथ उनका संगम कराना होगा ताकि उनकी संतानों की दूध देने की क्षमता में वृद्धि हो सके। सन 2002-05 की त्रिवर्षीय अवधि में संकर गायों से प्राप्त दूध की मात्रा 6.50 कि.ग्रा. प्रतिदिन थी जो देशी गायों से प्राप्त दूध की तुलना में 3.4 गुना अधिक थी। बाद के वर्षों में यह अंतर और बढ़ गया है।

प्रारंभ में देशी गायों के गर्भाधान हेतु देश के कृत्रिम

गर्भाधान केन्द्रों में विदेशों से आयातित जर्सी नस्ल के सांडों के शुक्राणु उपलब्ध कराए गए थे। परंतु अनुभव यह रहा कि दो पीढ़ी के पश्चात इन संकर गायों की दूध देने की क्षमता में गिरावट आने लगी। यह भी पाया गया कि जर्सी गायों का दूध भी हल्के किस्म का होने से आम आदमी को कम पसंद आता था।

इस अनुभव के बाद यह प्रश्न उठा कि देशी गायों की दूध देने की क्षमता में वृद्धि हेतु क्या किया जाए? इस मामले में ब्राज़ील का उदाहरण हमारे लिए मार्गदर्शक हो सकता है। पहले वहां की गायों की दूध उत्पादकता भी भारतीय गायों की उत्पादकता की तरह ही निम्न स्तरीय थी। तब वहां की सरकार ने गुजरात से अधिक दूध देने वाली गिर किस्म की गायों और सांडों तथा आंध्रप्रदेश से मांस की अधिक क्षमता वाली ओंगोल किस्म की गायों और सांडों का आयात किया। इन सांडों के शुक्राणुओं से वहां की स्थानीय गायों का कृत्रिम गर्भाधान कराया गया। इन प्रयासों के फलस्वरुप वहां की गायों की दूध देने की क्षमता तथा उनसे प्राप्त मांस की मात्रा भी बढ़ गई और ब्राज़ील भारत के बाद दूसरे नंबर का मांस निर्यातक राष्ट्र बन गया।

भारत में अनेक श्रेष्ठ किस्मों की गायें मौजूद हैं। जैसे थारपरकर, राजस्थान साहीवाल, गिर, कंकरेज, राठी आदि। ये गायें भारतीय जलवायु के अनुकूल भी हैं। इन किस्मों के सांडों के शुक्राणुओं के साथ कृत्रिम गर्भाधान केन्द्रों में देशी गायों का गर्भाधान कराया जाए तो जो बछड़ियां पैदा होंगी वे अधिक दूध देने वाली होंगी, जर्सी गायों की तुलना में उनका दूध बेहतर किस्म का होगा और वे भारतीय जलवायु की अभ्यस्त भी होंगी। इस दिशा में प्रयास तो प्रारंभ हो चुके हैं परंतु और बढ़ाना आवश्यक है।

दूध देने वाली गायें भी बढ़ती उम्र के कारण दूध देना बंद कर देती हैं और कृषि में गिरती उपयोगिता के कारण बैलों, दोनों को पालना किसानों के लिए कठिन और महंगा होता जा रहा है। ऐसे में वे इनका क्या करें, यह प्रश्न उठ खड़ा होता है। भारत में गाय को पवित्र पशु माना जाता है और विश्वास है कि इसके शरीर के विभिन्न अंगों में 33 करोड़ देवता निवास करते हैं। गायों के प्रति इन धारणाओं के कारण देश के अधिकांश राज्यों में गौवध प्रतिबंधित कर दिया गया है। ऐसे में प्रश्न उठता है कि दूध देना बंद कर देने वाली वृद्ध गायों और कृषि में उपयोगिता खोते बैलों का क्या किया जाए? किसानों के द्वारा इनको रखना भारी आर्थिक बोझ का कारण होता है और वे चाहते हैं कि इनसे मुक्ति मिले। इनकी संख्या करोड़ों में है। अगर इन्हें गौशालाओं में रखना चाहें तो हमें लाखों गौशालाओं की स्थापना करना होगी। ऐसा करना और उनका आर्थिक बोझ उठाना, वर्तमान परिस्थितियों में तो असंभव ही लगता है।

इस तरह एक ओर तो पशु पालकों की बूढ़ी और दूध देना बंद करने वाली गायों और कृषि में उपयोगिता खोते बैलों से मुक्ति पाने की बाध्यता के चलते देश के अधिकांश राज्यों में गौवध पर प्रतिबंध के बावजूद वे तस्करी के माध्यम से अंततः बांग्लादेश के बूचड़खानों में पहुंच जाते हैं। बांग्लादेश भारत से तस्करी के माध्यम से लाए गए गाय-बैलों के मांस तथा चमड़े का बड़ा निर्यातक बन गया है। वहां से चमड़े से बने जूतों तथा बैग आदि निर्यात किए जाते हैं।

गौरतलब है कि राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के अनुसार देश के तेरह व्यक्तियों में से एक को गौमांस खाने से कोई परहेज नहीं होता है। इस तरह देश में करीब 8 करोड़ लोग गौमांस खाते हैं। यह मान्यता भी गलत है कि गौमांस खाने वाले मुस्लिम, इसाई आदि ही होते हैं; 1.26 करोड़ हिन्दु भी गौमांस खाते हैं। इस तरह गौमांस के सेवन को किसी धर्म विशेष से सम्बंधित नहीं माना जा सकता है। अतः देश में भी गौमांस का बाज़ार उपलब्ध है।

गौकशी का प्रश्न कितना ही धार्मिक भावनाओं को उभारने का माध्यम क्यों न हो, सरकारें गौवंश के वध पर प्रतिबंध क्यों न लगा दे, अब तक तो अनुत्पादक, अनुपयोगी गौवंशी प्राणियों के बूचड़खाने में पहुंचना रोकने में असफलता ही मिली है। देश में गौमांस का उत्पादन और निर्यात बढ़ता ही जा रहा है। सन 2011 में देश में गौमांस का उत्पादन 33 लाख टन के बराबर था, इसमें से 13 लाख टन का निर्यात किया गया था। बाद के वर्षों में इन आंकड़ों में वृद्धि जारी रही और सन 2014-15 में उत्पादन बढ़कर 42 लाख टन हो गया जिसमें से 20 लाख टन का निर्यात किया गया था।

इस सारे विश्लेषण से स्पष्ट है कि धार्मिक भावनाओं का दोहन कर गौकशी के प्रश्न पर बढ़ती हिंसा पर रोक लगाई जाना ही चाहिए। देश में एक ओर तो दूध देना बंद कर देने वाली गायों और समय के साथ अपनी आर्थिक भूमिका खोते बैलों को पालना किसानों के लिए कठिन ही नहीं, असंभव बनता जा रहा है। वहीं दूसरी और गौमांस से परहेज़ न करने वाले भारतीयों (हिन्दु, मुस्लिम, इसाई आदि) की मांस की बढ़ती मांग में तथा निर्यात में वृद्धि होने से इन अनुपयोगी पशुओं को बेचकर किसानों को कुछ आय प्राप्त हो जाती है। इन सब कारणों से देश में गौकशी में वृद्धि होती जा रही है। इन्हीं कारणों से आने वाले वर्षों में देशी और संकर गौवंशी जानवरों में भी बैलों की संख्या में गिरावट जारी रहने के संकेत भी स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। अगर हम गौवंश की संख्या में गिरावट की प्रवृत्ति को कम करना चाहते हैं तो कुछ धारणाओं में बदलाव लाना होगा। वर्तमान में दूध की कीमत उसमें उपलब्ध वसा के प्रतिशत के आधार पर तय की जाती है। भैंस के दूध में वसा की मात्रा अधिक होने से पशुपालकों को उसकी बेहतर कीमत प्राप्त होती है। दूसरी ओर, सॉलिड नॉन-फैट्स (गैर-वसीय ठोस पदार्थ) गाय के दूध में अधिक होते हैं जो बच्चों के विकास के लिए तथा मानव स्वास्थ्य के लिए बेहतर होते हैं। इस पृष्ठभूमि में दुग्ध सहकारी समितियां भैंसों और गायों के दूध को अलग-अलग थैलियों में पैक करें और मानव स्वास्थ्य और बच्चों के विकास हेतु गायों के दूध की श्रेष्ठता को प्रचारित करें तो गायों के दूध की अच्छी कीमत प्राप्त हो सकेगी। इससे गाय पालने के काम को आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद बनाया जा सकेगा और इनकी संख्या में गिरावट की प्रक्रिया भी धीमी हो सकेगी। ***(स्रोत फीचर्स)***